रुचि का जोर...

आत्मा के अनुभव के पहले आत्मा के सन्दर्भ में सम्पूर्ण सम्यक् जानकारी अत्यन्त आवश्यक है; अन्यथा आत्मानुभव सम्भव नहीं। एक भी परमाणु अपना नहीं है, उसकी सत्ता निज में नहीं है ह्न ऐसा दृढ ज्ञान होना चाहिए। त्रिकाली ध्रुव आत्मा के ज्ञान के साथ ही 'ये ही मैं हूँ' ह्न इस प्रतीति के साथ उसका श्रद्धान भी अत्यन्त आवश्यक है। मात्र परद्रव्य और आत्मा भिन्न-भिन्न है ह्न ऐसा जानने से काम नहीं चलेगा। 'आत्मा मै हूँ और परद्रव्य मैं नहीं हूँ' ह्न ऐसी दृढ़ प्रतीति होनी चाहिए।

आत्मानुभव तो बाद में होगा; लेकिन हमें उसके पहले इतना दृढ़ श्रद्धान होना चाहिए कि त्रिलोक बदल जाये तो भी हमारी श्रद्धा नहीं पलटनी चाहिये। कोई व्यक्ति आये और जादू दिखाए, देखते ही हमारी श्रद्धा पलट जाये ह्न ऐसी अस्थिर श्रद्धा से काम नहीं चलेगा। वह जादूगर कहे कि देखो मैंने मेरे मंत्र से घड़ी गायब कर दी, आकाश में से घडी बुला ली। इस मंत्रजाल को देखकर हमारी श्रद्धा बदले तो यह हमारे श्रद्धा की अस्थिरता ही है। यही कारण है कि ज्ञान के साथ श्रद्धा जुड़ी हुई है, इसलिए सर्वप्रथम व्यवहार में भी ऐसा दृढ़ज्ञान-दृढ़श्रद्धान होना जरूरी है। यथार्थ श्रद्धा तो बाद में होगी, इसे व्यवहार श्रद्धा यह नाम भी बाद में मिलेगा; लेकिन सर्वप्रथम यह कार्य होना अत्यन्त जरूरी है।

इस सहज प्रक्रिया के पश्चात् आत्मानुभव का काल नियम से आएगा। **इस जीव के रुचि के जोर से ही आत्मानुभव का काल आएगा।** क्रियाकाण्ड के जोर से आत्मानुभव का काल नहीं आएगा।

रुचि का जोर इसलिए अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि आजतक इस जीव ने सम्पूर्ण जगत को अपना मान रखा है। इसमें स्त्री, पुत्र, मकान, जायदाद, अर्हन्त, सिद्ध सब सम्मिलित हैं। इन सबको एकसाथ एक झटके में छोड़ना है। छोड़ना अर्थात् श्रद्धा में इन सबको अपना मानना छोड़ना है। 'ये मेरे नहीं हैं' ह्न ऐसा मानकर परद्रव्यों से पूर्णत: उपयोग को हटाकर जो मेरा है ह्न ऐसे त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा पर दृष्टि को केन्द्रित करना है।

त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा पर दृष्टि जाने से अनन्त आनन्द आएगा ह्न भगवान आत्मा की ऐसी महिमा अपनी श्रद्धा में होनी चाहिए, तभी आत्मानुभव सम्भव है। **ह्न समयसार का सार, पृष्ठ : 166-167**

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 22 256 अंक : 4

प्रवचनसार पद्यानुवाद

ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

शुभपरिणामाधिकार

अयथार्थ जाने तत्त्व को अति रती विषयों के प्रति।
और करुणाभाव ये सब मोह के ही चिह्न हैं।।८५।।
तत्त्वार्थ को जो जानते प्रत्यक्ष या जिनशास्त्र से।
दृगमोह क्षय हो इसलिए स्वाध्याय करना चाहिए।।८६।।
द्रव्य-गुण-पर्याय ही हैं अर्थ सब जिनवर कहें।
अर द्रव्य गुण-पर्यायमय ही भिन्न वस्तु है नहीं।।८७।।
जिनदेव का उपदेश यह जो हने मोहरु क्षोभ को।
वह बहुत थोड़े काल में ही सब दुखों से मुक्त हो।।८८।।
जो जानता ज्ञानात्मक निजरूप अर परद्रव्य को।
वह नियम से ही क्षय करे दृगमोह एवं क्षोभ को।।८९।।
निर्मोह होना चाहते तो गुणों की पहिचान से।
तुम भेद जानो स्व-पर में जिनमार्ग के आधार से।।९०।।
द्रव्य जो सविशेष सत्तामयी उसकी दृष्टि ना।
तो श्रमण हो पर उस श्रमण से धर्म का उद्भव नहीं।।९१।।
आगमकुशल दृगमोहहत आरूढ़ हों चारित्र में।
बस उन महात्मन श्रमण को ही धर्म कहते शास्त्र में।।९२।।

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

कौन बंधता है और कौन नहीं ?

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 26 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है ह्न

बध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममो क्रमात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत्।।26।।

ममतासहित जीव और ममतारहित जीव अनुक्रम से बंधता है और मुक्त होता है, इसलिए सम्पूर्ण प्रयत्न से निर्ममत्व का विशेषरूप से चिन्तवन करना चाहिए।

(गतांक से आगे .....)

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि ह्न आत्मद्रव्य और कर्मपुद्गल द्रव्य दोनों भिन्न-भिन्न हैं, अध्यात्मयोग के बल से उन दोनों का संबंध भी नहीं होता है। जब आत्मा के आनन्दस्वरूप में दृष्टि-ज्ञान और अनुभवरूप निमित्तों का संबंध ही नहीं रहा तो कर्मों का बंध नहीं होगा, और तब बंध के अभावस्वरूप मोक्ष भी कैसे होगा ? बंध हो तो बंध का अभाव होता है इस रीति से बंध और मोक्ष तो सिद्ध नहीं होता।

मोक्ष तो अविच्छिन्न और अविनाशी परमआनन्द और परमसुख का कारण होने से सम्यग्दृष्टि से लेकर योगीजन तक सभी उसकी भावना भाते हैं। धर्मीजीव भी अंतर एकाग्रता पूर्वक एक अतीन्द्रिय सुखस्वरूपी मोक्ष की ही प्रार्थना करते हैं, अन्य कोई भावना उनके नहीं रहती। वे तो एक पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का ही प्रयत्न करते हैं। जब बंध होवे तब उसका अभाव होकर मोक्ष प्राप्त होगा, तभी योगीजन उसकी भावना करेंगे, इसलिये सर्वप्रथम बंध और मोक्ष किस रीति से होते है ह्न यह सिद्ध करो ?

इस प्रश्न के उत्तरस्वरूप आचार्य पूज्यपादस्वामी ने उक्त 26 वाँ श्लोक कहा है।

यहाँ आचार्य कहते हैं कि ह्न यह तो पंचमकाल में मुनियों का दिया हुआ इष्ट उपदेश है; लेकिन तीन काल के मुनियों और तीर्थंकरों का उपदेश एक ही होता है;

काल भले ही व्यतीत होवे, लेकिन हित का मार्ग तो एक ही है।

उक्त श्लोक का अर्थ स्पष्ट करते हुए पूज्यपादस्वामी कहते हैं कि ह्न ममतायुक्त जीव बंधता है और निर्ममत्व जीव बंधता नहीं है, इसलिये प्रत्येक जीव को निर्ममपना प्रगट करने का लक्ष्य रखना चाहिए।

अनादिकाल से जीवों को मिथ्या अभिप्राय है, इसीकारण कर्मबन्धन होता है, यदि अपने स्वभाव में एकाग्रता करे तो कर्मबन्धन नहीं होवे। निमित्त के, राग के, पुण्य के संबंध से धर्मलाभ होगा ह्न ऐसे अभिप्राय को मिथ्या अभिनिवेश कहते हैं। इसीकारण जीव कर्मों से बंधता है।

भगवान आत्मा अकेला चैतन्यज्ञानसूर्य स्वभावी है; किन्तु यह जीव उस ज्ञानान्दस्वभाव में अपनापन न करके शरीर, विकल्प और रागादि में अपनापन करता है, उसे भगवान सर्वज्ञदेव मिथ्या अभिप्राय कहते है। जिसके अभिप्राय में ऐसा मिथ्यात्व पड़ा है उस जीव को कर्मों का बन्ध होता है। ज्ञायकस्वभावरूप मैं हूँ ह्न ऐसा न मानकर जो जीव राग की मन्दता आदि नाना विकल्परूप अपने आप को देखते हैं वे जीव बन्धन को प्राप्त होते हैं और इन विकल्पों से छूटकर जो अपने ज्ञायकस्वभाव को स्वीकारता है, उसमें लीन होता है वह बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

जो जीव अपने ज्ञानानन्द, निर्मल, शुद्ध, चैतन्य स्वभाव को छोड़कर शुभाशुभ रागादि विकल्पों में अपनापन, मिथ्याभिप्रायह्नविपरीताभिनिवेश करता है, वह जीव आठ कर्मों से बंधता है। रागादि विकल्प मैं हूँ और वे मेरे हैं ह्न ऐसा जो मिथ्या अभिप्राय है, वह ही कर्मबन्धन का कारण है। तथा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप मैं हूँ और रागादि मेरे नहीं हैं ह्न ऐसा जो सम्यक् अभिप्राय है, वह कर्मबन्धन से मुक्त होने का कारण है।

शुभ-अशुभ भाव मेरे हैं और मैं उनका हूँ ह्न ऐसी मान्यता मिथ्यादर्शन शल्य है और यह शल्य ही आठ कर्मों के महाबन्ध का कारण है। इस विषय में आचार्य अमृतचन्द्र समयसार कलश 164 में कहते हैं कि जिसप्रकार कर्मबन्धन का कारण सम्पूर्ण जगत में व्याप्त कर्म योग्य पुद्गल नहीं है; उसीप्रकार मन-वचन-काया की क्रियारूप योग अथवा इन्द्रियाँ अथवा जड़-चेतन का घात भी आत्मा को बन्ध का

कारण नहीं हैं। आत्मा को बन्ध का कारण तो एकमात्र राग और उसके साथ एकत्वपना-अपनापना मानना है।

चैतन्य भगवान जानन-देखन स्वभाववाला है। जानने-देखनेरूप स्वभाव की सत्ता में-भूमिका में जो शुभराग अथवा अशुभराग उत्पन्न होता है, उपयोग का उसके साथ एकपना करना ही मिथ्यादर्शन है और उससे कर्मबन्ध होता है।

लोगों को वस्तुस्वरूप क्या है ? अन्तर्वस्तु क्या है और परवस्तु क्या है ? इन दोनों का विवेक नहीं है; इसलिए इन दोनों वस्तुओं में अपनापन मानते हैं और कर्मबन्धन होता है; परन्तु जो जीव अपने विवेक से इन दोनों में भेदविज्ञान कर लेते हैं, उन्हें वीतराग मार्ग प्राप्त होता है।

वीतराग, सर्वज्ञदेव, परमेश्वर ने जगत में छह द्रव्यों की सत्ता कही है। छह द्रव्य तो जातिअपेक्षा से है, लेकिन संख्या अपेक्षा तो अनन्त द्रव्य हैं; किन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कार्य करे ह्न ऐसा तीन काल में भी नहीं होता। यहाँ पर दो द्रव्यों की अपेक्षा नहीं है; लेकिन दया, अहिंसा, सत्य आदिरूप जो शुभभाव है, उसमें लाभ मानकर जो जीव अपने शुद्धस्वभाव और शुभभाव को एक मानता है, वह अज्ञानी है। यही उसका मिथ्या अभिप्राय है, जो बन्ध का कारण है।

दूसरी रीति से कहें तो पुण्य आदि आस्रव तत्त्वों की सत्ता ज्ञायक स्वभाव में नहीं है। भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन स्वभावी, अविकारी, अरूपी, वीतरागी, निर्विकार, आनन्दमूर्ति है। आत्मा में जो दया, दान आदि राग की पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय परद्रव्य में उत्पन्न ही नहीं होती है तो परद्रव्य की दया कैसे पालेगी ? परद्रव्य में कोई फेरफार कर सके ऐसा राग का स्वभाव नहीं है तथा जब राग परद्रव्य की सत्ता में है ही नहीं तो जीव उसकी दया कैसे पाल सकता है ? उसीप्रकार राग चैतन्य की सत्ता में नहीं है, तो वह आत्मा को लाभ कैसे करायेगा ?

एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व के साथ जोड़ना, एक मानना मिथ्यात्व है। 'उपयोग भू' अर्थात् उपयोगरूपी जमीन अथवा उपयोगरूपी सत्ता। अनंतानंत ज्ञान-दर्शन, आनन्द आदि स्वभाव की सत्तावाली वस्तु में रागादि की एकता मानने से रागादि मैं हूँ और वे मेरे हैं ह्न ऐसा जो विपरीताभिनिवेश होता है, वह मिथ्यात्व है । वह मिथ्यात्वभाव कर्मबन्धन में निमित्त होता है। **(क्रमशः)**

निर्दोष अरहंतदशा कैसी ?

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की छठवीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

छुहतण्हभीरुरोसो रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू।
सेदं खेद मदो रइ विम्हियणिद्दा जणुव्वेगो ।।6।।

क्षुधा, तृषा, भय, रोष, राग, मोह, चिन्ता, जरा, रोग, मृत्यु, स्वेद, खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा, जन्म और उद्वेग – ये अठारह दोष अरहंत भगवान में नहीं होते।

(गतांक से आगे ....)

अठारह दोष रहित सर्वज्ञ भगवान को पहिचानना व्यवहार श्रद्धा है। अब इसका थोड़ा खुलासा करते हैं ह्न

वीतराग सर्वज्ञ के, द्रव्य-भाव घातिया कर्मों का अभाव होने से ह्न भय, रोष, राग, मोह, शुभाशुभ चिंता, खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा तथा उद्वेग आदि कहाँ से होंगे ? नहीं हो सकते। केवली भगवान के समुद्र जैसे साता वेदनीय कर्मों के मध्य, बिंदुवत् असाता वेदनीय कर्मों का उदय होता है; वह असाता भी, मोहनीय कर्म के अत्यन्ताभाव में, लेशमात्र भी क्षुधा या तृषा का निमित्त नहीं होती; क्योंकि चाहे कितना भी असाता वेदनीय कर्म का उदय हो, वह मोहनीय कर्म के अभाव में किंचित् भी दु:ख नहीं दे सकता। तो फिर यहाँ तो अनन्तगुणे सातावेदनीय कर्म के मध्य, अल्पमात्र (अविद्यमान जैसा) असातावेदनीय कर्म वर्त रहा है; अत: क्षुधा-तृषा की वेदना नहीं हो सकती। क्षुधा-तृषा के सद्भाव में अनंतवीर्य इत्यादि कैसे सम्भव होंगे ? इसप्रकार वीतराग-सर्वज्ञ के क्षुधा-तृषा असम्भव होने से कवलाहार भी नहीं होता। कवलाहार बिना भी उनके (अन्य मनुष्यों को जो असम्भव है ऐसा) सुगन्धित, सप्तधातुरहित, परमौदारिक शरीररूप, नोकर्माहार के योग्य, सूक्ष्म पुद्गल परमाणु प्रतिक्षण आते हैं, जिनसे शरीर स्थित रहता है।

भूख लगे और भोजन करें, उसे भगवान नहीं कहते। भगवान के प्रतिक्षण पुण्य के उदय से अमुक प्रकार के ऐसे रजकण आते हैं कि जिनसे शरीर ज्यों का त्यों बना रहता है। इन्द्र को रोग नहीं होता और हजारों वर्ष बाद आहार की वृत्ति होती है; तो इन्द्र के द्वारा पूज्य ऐसे सर्वज्ञ भगवान को रोग या आहार हो, यह कैसे सम्भव है ? भगवान के तो क्षुधा, रोग या आहारादि कोई दोष होते ही नहीं। उनके वेदनीय कर्म है, परन्तु मोह नहीं है अर्थात् वह वेदनीय कर्म 'जली जेवरी' के समान है और क्षुधा-तृषा उत्पन्न करने में असमर्थ है।

देखो ! श्रीमद् रायचन्द्र भी कहते हैं ह्न

वेदनीय आदि चार कर्म वर्तें जहाँ ह्न जली जेवरीवत् आकृति मात्र ज्यों।

भगवान के चार अघातिया कर्म सत्ता में हैं ह्न किन्तु जैसे जली हुई रस्सी बाँधने का कार्य नहीं कर सकती, उसीप्रकार वह वेदनीय कर्म भी मोह के अभाव में क्षुधा, तृषा का निमित्त नहीं होता। निचली दशावाले जीवों को भी मोह ही दु:ख का कारण है। पूर्ण दशा होने पर मोह का अभाव हो जाता है, तब क्षुधा-तृषा का दु: ख नहीं होता और आहार-जल भी नहीं होता। भगवान के निहार (मल-मूत्र) तो जन्म से ही नहीं होता और भगवान के माता-पिता के भी निहार नहीं होता।

पवित्रता और पुण्य का ऐसा सम्बन्ध होता है अर्थात् घातिया कर्मों के अभाव का और शेष रहे हुये अघातिया कर्मों का ऐसा सहज सम्बन्ध होता है कि वीतराग सर्वज्ञ के उन अघातिया कर्मों के फलरूप परमौदारिक शरीर में जरा, रोग और स्वेद होता ही नहीं।

केवली भगवान के भवान्तर में उत्पत्ति के निमित्तभूत शुभाशुभ भाव नहीं होने से जन्म भी नहीं होता और जिस देह विलय के बाद भवान्तर-प्राप्तिरूप जन्म नहीं होता, उस देहवियोग को मरण भी नहीं कहा जाता।

इसप्रकार सर्वज्ञदेव अठारह दोष रहित हैं।

इसीप्रकार अन्य शास्त्र में भी गाथा द्वारा कहा है ह्न

सो धम्मो जत्थ दया सो वि तवो विसयणिग्गहो जत्थ।
दसअट्ठदोसरहिओ सो देवो णत्थि संदेहो।।

वह धर्म है जहाँ दया है, वह तप है जहाँ विषयों का निग्रह है, वह देव है जो अठारह दोषरहित है; इस बारे में संशय नहीं है।

राग-द्वेष-मोह की उत्पत्ति होना ही आत्मा की हिंसा है और चैतन्यस्वभाव का भान करके राग-द्वेष-मोह की उत्पत्ति न होने देना, अपने आत्मा को हिंसा के भावों से बचाना ही दया है। पर को तो कोई मार या बचा ही नहीं सकता। अपने शुद्ध चैतन्य की कषायभाव से हिंसा न होने देना ह्न वही दया धर्म है।

चैतन्य के भान में एकाग्र होने पर जहाँ विषयों का निग्रह हो जाता है, उसका नाम तप है। जो क्षुधादिक अठारह दोषों से रहित है वही देव है, इस बात में संशय नहीं है।

ऐसे अठारह दोषों से रहित निर्दोष परमात्मा को पहिचान कर उनकी श्रद्धा करना योग्य है।

आचार्य श्री विद्यानन्द स्वामी ने भी श्लोक द्वारा कहा है ह्न

अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः,
स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैः,
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति॥

इष्ट फल की सिद्धि का उपाय सुबोध है अर्थात् मुक्तिप्राप्ति का उपाय सम्यग्ज्ञान है। सुबोध सुशास्त्र से होता है, सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है, इसलिए उनके प्रसाद के कारण आप्त पुरुष बुधजनों से पूज्य है अर्थात् मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से सर्वज्ञदेव ज्ञानी जीवों द्वारा पूज्य हैं; क्योंकि कृतोपकार को साधु पुरुष (सज्जन) भूलते नहीं हैं।

देखो ! यह बहुत सरस श्लोक है। श्री विद्यानन्द स्वामी महानिर्ग्रन्थ सन्त थे। आत्मानन्द में छट्ठीं-सातवीं भूमिका में झूलते थे। उन्होंने इस श्लोक की रचना की है।

इष्टफल अर्थात् मोक्ष। आत्मा को इष्ट तो पूर्णानन्द की प्राप्तिरूप मुक्तदशा ही है। पैसा मिले, पुत्र मिले, यह वास्तव में आत्मा को इष्ट नहीं; उसमें आत्मा का सुख भी नहीं। जिसमें आत्मा के परम आनन्द की प्राप्ति हो, ऐसी मुक्तदशा ही हमें इष्ट है।

पुण्य बंध हो और स्वर्ग का इन्द्र पद मिले, उसको धर्मी जीव अपना इष्टफल नहीं मानता। जिसे आत्मा की रुचि है उसको तो मुक्तदशा ही इष्टफल है। मुक्ति के अलावा जिसे कोई भी परवस्तु इष्ट लगे, अच्छी लगे, उसे मोक्ष इष्ट नहीं है; किन्तु संसार ही इष्ट है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। हमारा श्रेष्ठतम इष्टफल तो मोक्ष पद है और उसकी प्राप्ति का उपाय सुबोध है। चैतन्य स्वभाव का सम्यग्ज्ञान किये बिना लाखों उपायों से भी मुक्ति प्राप्त होनेवाली नहीं है।

दुःख क्या है ? चैतन्य का विकृत भाव ही दुःख है और उस चैतन्य के भान से विकृति टाल देने पर सहज आनन्द रह जाता है, उसका नाम मुक्ति है। ऐसी परमानन्दमय मुक्तदशा का उपाय सम्यग्ज्ञान है। लौकिक ज्ञान के विकास को वास्तव में सुविद्या नहीं कहते, मात्र शास्त्र पठन को भी सुविद्या नहीं कहते। सुविद्या तो उसे कहते है कि जिसमें से सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित आत्मा का स्वभाव क्या और परभाव क्या ? यह समझे ह्न ऐसा सुबोध ही मुक्ति का कारण है।

आत्मसिद्धि में श्रीमद् रायचन्द्र भी कहते हैं ह्न

सर्व जीव हैं सिद्ध सम जे समझें सो होंय।

समझ अर्थात् सुबोध ह्न यही मुक्ति का उपाय है। आत्मा की चिरस्थायी शान्ति का उपाय सम्यग्ज्ञान है। वह सम्यग्ज्ञान कैसे हो ? तो कहते हैं कि सुबोध, सुशास्त्र से होता है और सुशास्त्र वह है ह्न जो सर्वज्ञ परमात्मा की ध्वनि में कहे हुए तत्त्वों का उद्घाटन करे ह्न वही सम्यग्ज्ञान का कारण है। इसके अलावा कुशास्त्र से सम्यग्ज्ञान नहीं होता, सुशास्त्र ही उसका निमित्त होता है और जो समझे उसे ही निमित्त है।

सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त ऐसे सर्वज्ञदेव से होती है। सर्वज्ञ की भाषा सामान्य नहीं होती। 'ओऽम्' ऐसी सहज ध्वनि होती है और उसे सभी श्रोता अपनी-अपनी भाषा में योग्यता प्रमाण समझ लेते है। ऐसे सर्वज्ञ की वाणी सुशास्त्र है और वही सम्यग्ज्ञान का उपाय है। इसप्रकार मुक्ति के लिये सर्वज्ञ का निर्णय करना चाहिये। उनके कहे हुए तत्त्व का निर्णय करके सम्यग्ज्ञान करना चाहिये। सर्वज्ञ कथित जिनेन्द्र शासन ही वस्तु का स्वभाव है, सर्वज्ञ की वाणी की परम्परा झेलकर सन्तों ने जो उपदेश दिया है वह भी भगवान की ही वाणी कही जाती है। **(क्रमशः)**

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है। उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे .....)

अहा ! आचार्यों ने कैसा गजब भेदज्ञान कराया है। वीतराग मार्ग बहुत सूक्ष्म है। इसे जरा ध्यान से सुनना-समझना होगा। यहाँ कहते हैं कि - आत्मा पर का कुछ करता है' - यह बात तो बहुत दूर रह गई, पर का कर्ता तो आत्मा है ही नहीं; किन्तु परपदार्थ अपने ज्ञान की पर्याय में जाने जाते हैं, ज्ञान पर को जानता है अथवा परज्ञेय ज्ञान की पर्याय में प्रवेश करे - ऐसा भी नहीं है।

'आत्मा में पर जाना जाता है' - यह कहना व्यवहार है। निश्चय से पर नहीं जाना जाता। अपनी जाननक्रिया ही जाननेरूप है, वही ज्ञान में आती है या जानी जाती है।

आत्मा स्वयं जानने के भाववाला तत्त्व होने से लोकालोक के जितने ज्ञेय हैं, उनको तथा अपनी स्वयं की जानने की क्रियारूप से अपने में अपने कारण परिणमित होता है। वस्तुतः ये ज्ञान की पर्यायें हमारे शाश्वत ज्ञेय हैं। हमारे ज्ञान की निर्मल पर्याय में पर पदार्थ झलकने का सहज स्वभाव है, इसकारण पर (पदार्थ) ज्ञेय हैं - ऐसा कहना व्यवहार है। वस्तुतः तो हम अपनी उस निर्मल ज्ञानपर्याय को ही जानते हैं, जिसमें लोक के द्रव्य झलकते हैं।

परद्रव्यरूप ज्ञेयों के आकार अर्थात् ज्ञेयों के विशेष अपनी ज्ञानपर्याय में झलकते हैं अर्थात् ज्ञेयों संबंधी अपना ज्ञान अपने में अपने से परिणमता है, वह ज्ञान ज्ञेयाकार दिखता है - ऐसा कहा; किन्तु वस्तुतः अपना ज्ञान ज्ञेयाकार हुआ नहीं है। अपना ज्ञान तो ज्ञानाकार अर्थात् ज्ञान की ही तरंगें हैं।

देखो, दर्पण के दृष्टान्त से यह बात समझाते हैं - जिसप्रकार दर्पण के सामने कोयला, अग्नि वगैरह रखी हो तो दर्पण में दिखाई देती है; किन्तु वह अग्नि या कोयला दर्पण से बिल्कुल जुदे हैं। दर्पण में तो उन पदार्थों की मात्रा झलक दिखती है, वे पदार्थ तो दर्पण में प्रविष्ट हुए नहीं हैं। दर्पण में तो दर्पण की स्वच्छता का ही अस्तित्व है। यदि अग्नि ने दर्पण में प्रवेश किया होता तो दर्पण अग्निमय हो जाता; परन्तु ऐसा तो होता नहीं है। दर्पण अपनी स्वच्छता के परिणाम से स्वयं ही अपने से परिणमा है, कोयला या अग्नि का उसमें कुछ भी नहीं है।

इसीप्रकार भगवान आत्मा स्वच्छ चैतन्य दर्पण है। उसके ज्ञान में जो ज्ञेयों के आकार की झलक है। उस झलक के पड़ने पर ज्ञान ज्ञेयाकार दिखाई देता है। ज्ञान के सामने जैसे ज्ञेय होते हैं, उसीप्रकार की विशेषता रूप से अपनी ज्ञान की दशा होकर उन ज्ञेयों को जानती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ज्ञान ज्ञेयाकार हो गया है; परन्तु ज्ञान ज्ञेयाकार होता नहीं है; बल्कि ज्ञान की ही कल्लोलें हैं, ज्ञान की ही दशायें हैं। ज्ञेयों का उसमें कुछ भी नहीं है।

अहा ! अपनी ऐसी अस्तित्व की महिमा जाने बिना तू दया-दान, व्रत-तप कर-करके शरीर को सुखा लेता है तो भी रंचमात्रा भी धर्म नहीं होता। अपने स्वरूप की महिमा के बिना धर्म की क्रिया हो ही नहीं सकती।

यहाँ कहते हैं कि ज्ञान की कल्लोलें ही ज्ञान से ज्ञात होती है। अपने अस्तित्व में दया-दान आदि के भाव और शरीर-मन- वाणी आदि परज्ञेयों का प्रवेश नहीं होता। इसलिए जानने की क्रिया ही ज्ञान से, आत्मा से ज्ञात होती है। जो दया आदि के परिणाम होते हैं, उन्हें जानने की क्रिया आत्मा की है और वे इसके ज्ञेय हैं। वे दया आदि के परिणाम परमार्थ से आत्मा के नहीं हैं और परमार्थ से आत्मा के ज्ञेय भी नहीं हैं।

देखो, इस सब कथन का सारांश यह है कि - जानने योग्य परपदार्थ पर में ही रहते हैं और जाननेवाला जाननेवाले में रहता है। जाननेवाला ज्ञाता स्वयं ज्ञानरूप होता हुआ स्वयं को ही जानता है। इसप्रकार आत्मा स्वयं से ही जाननेयोग्य है। ज्ञानमात्रा भाव ही स्वयं का ज्ञेय है। परपदार्थों को ज्ञेय कहना तो व्यवहार है।

तथा स्वयं ही अपना ज्ञान जाननेवाला होने से ज्ञानमात्रा भाव ही ज्ञाता है। पर के साथ परमार्थ से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। जो जानने में आता है, वे ज्ञेय के प्रतिबिम्ब आत्मा की ही दशायें हैं, जाननेवाला ज्ञाता भी स्वयं और ज्ञान भी स्वयं ही है। ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय - तीनों एकरूप हैं। अन्तर में दृष्टि डालने पर ऐसे तीन भेद आत्मा के नहीं ठहरते।

'ऐसा ज्ञानमात्रा भाव मैं हूँ' - ऐसा अनुभव करनेवाला पुरुष यह अनुभव करता है कि ज्ञाता भी मैं हूँ, ज्ञान भी मैं हूँ और ज्ञेय भी मैं ही हूँ। - ऐसा अनुभव होना ही धर्म है।

देखो, यहाँ सामान्य-विशेष - दोनों को एकसाथ लिया है; क्योंकि प्रमाणज्ञान कराना है। प्रमाणज्ञान में वस्तु त्रिकाली सत्, इसकी शक्तियाँ त्रिकाली सत् और इसकी वर्तमान पर्याय - इन तीनों को ही आत्मा कहा है। इसमें शरीर, मन, वाणी, कर्म और विकार आदि नहीं आते।

अनादिकाल से जगत के परिणमन को अपनी इच्छानुकूल करने की आकुलता से व्याकुल प्राणी जब यह अनुभव करता है कि जगत के परिणमन में मैं कुछ भी फेर-फार नहीं कर सकता तो उसका उपयोग सहज ही जगत से हटकर आत्मसन्मुख होता है। और जब यह श्रद्धा बनती है कि मैं अपनी क्रमनियमित पर्यायों में भी कोई फेर-फार नहीं कर सकता तो पर्याय पर से भी दृष्टि हट जाती है और स्व-स्वभाव की ओर ढलती है।

दृष्टि का स्वभाव की ओर ढलना ही मुक्ति के मार्ग में अनन्त पुरुषार्थ है। क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा करनेवाले को उक्त श्रद्धा के काल में आत्मोन्मुखी अनन्त पुरुषार्थ होने का और सम्यग्दर्शन प्रगट होने का क्रम भी सहज होता है।

कर्तृत्व के अहंकार से ग्रस्त इस जगत को पर में या पर्याय में कुछ फेर-फार करने में ही पुरुषार्थ दिखाई देता है; किन्तु पर और पर्याय सम्बन्धी विकल्पों से विराम लेकर स्व में स्थिर हो जाने में पुरुषार्थ नहीं दिखता। सर्वज्ञ भगवान पर में व अपनी पर्याय में कुछ भी फेर-फार नहीं करते, तो क्या वे पुरुषार्थहीन हो गये ? क्या उनके मोक्ष पुरुषार्थ नहीं है ?

ह्न क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ : 54

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : समयसार की ग्यारहवीं गाथा में शुद्धनय का अवलम्बन लेने को कहा, किन्तु शुद्धनय तो ज्ञान का अंश है ह्न पर्याय है; क्या उस अंश का अवलम्बन लेने से सम्यक्त्व होगा ?

उत्तर : अकेले अंश को पकड़कर उसके ही अवलम्बन में जो अटक गया, उसे तो शुद्धनय है ही नहीं। ज्ञान के अंश को अन्तर में लगाकर जिसने त्रिकाली द्रव्य के साथ अभेदता की, उसे ही शुद्धनय होता है और ऐसी अभेददृष्टि हुई तभी शुद्धनय का अवलम्बन लिया ह्न ऐसा कहा जाता है अर्थात् शुद्धनय का अवलम्बन ह्न ऐसा कहने पर उसमें भी द्रव्य-पर्याय की अभेदता की बात है। परिणति अन्तर्मुख होने पर द्रव्य में अभेद हुई और जो अनुभव हुआ, उसका नाम शुद्धनय का अवलम्बन है, उसमें द्रव्य-पर्याय के भेद का अवलम्बन नहीं है। यद्यपि शुद्धनय स्वयं ज्ञान का अंश है, पर्याय है; परन्तु वह शुद्धनय अन्तर के भूतार्थस्वभाव में अभेद हो गया है अर्थात् वहाँ नय और नय का विषय जुदा नहीं रहा। जब ज्ञानपर्याय अन्तर में झुककर शुद्धद्रव्य के साथ अभेद हुई तब ही शुद्धनय हुआ। वह शुद्धनय निर्विकल्प है।

प्रश्न : शास्त्र में व्यवहार को भी प्रशंसनीय कहा है?

उत्तर : निश्चयनय से शुद्धात्मा की भावनावाले जीव को अर्थात् साधक जीव को जबतक पूर्ण वीतरागता प्रकट न हो तबतक निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ जो व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, नव तत्त्व का ज्ञान और पंचमहाव्रत का आचरण है; उसको निश्चय का सहकारी जानकर प्रशंसनीय कहा है। उसे व्यवहार से मोक्षमार्ग भी कहा है, तथापि परमार्थ से तो वह बन्धमार्ग ही है; अत: निश्चय शुद्धात्मा की भावना के काल में वह व्यवहार प्रशंसा योग्य नहीं है। साधक जीव को पूर्ण वीतरागता न हो तबतक अर्थात् प्रथम अवस्था में व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-आचरण को प्रशंसनीय कहा है तो भी शुद्धात्मा की भावना के काल में प्रशंसा योग्य नहीं है।

प्रश्न : निश्चयनय और व्यवहारनय का परस्पर विरोध है या मैत्री?

उत्तर : निश्चयनय और व्यवहारनय में है तो विरोध ही, किन्तु दोनों साथ रहते है ह्न इस अपेक्षा से मैत्री भी कही जाती है। जैसा सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन में विरोध है अर्थात् वे दोनों एकसमय भी साथ-साथ नहीं रह सकते, वैसा विरोध इन दोनों नयों में नहीं है। ये दोनों साथ-साथ रहते हैं, अत: मैत्री कही जाती है।

प्रश्न : आप व्यवहार को हेय कहते है, तो क्या व्यवहार है ही नहीं ?

उत्तर : व्यवहार है भले ही, परन्तु मोक्षमार्ग उसके आधार से नहीं है। व्यवहार के आधार से मोक्षमार्ग मानना तो परद्रव्य से लाभ मानने जैसा है। जिसप्रकार परद्रव्य है, इसलिये स्वद्रव्य है ह्नऐसी मान्यता में स्व-पर की एकताबुद्धिरूप मिथ्यात्व है; उसीप्रकार रागरूप व्यवहार है इसलिये निश्चय है ह्न ऐसी मान्यता में स्वभाव और परभाव की एकताबुद्धिरूप मिथ्यात्व है। साधक को सुख के साथ किंचित् दु:ख भी है, दोनों धारायें (एक बढ़ती हुई और दूसरी घटती हुई) साथ ही वर्तती है; तो क्या वे दोनों परस्पर एक-दूसरे के कारण से हैं ? नहीं; दोनों साथ होने पर भी दु:ख है, इसलिये सुख है ह्न ऐसा नहीं है; उसीप्रकार निश्चय और व्यवहार साथ होने पर भी व्यवहार है, इसलिए निश्चय है ह्न ऐसा नहीं है। व्यवहार के आश्रय से बन्धन है और निश्चय के आश्रय से मुक्ति है ह्न ऐसे दोनों भिन्न-भिन्न स्वरूप से वर्तते हैं।

प्रश्न : ज्ञानी तो व्यवहार को हेय मानता है, फिर भी ज्ञानी के व्यवहार का फल संसार क्यों ?

उत्तर : ज्ञानी का व्यवहार भी राग है और राग का फल संसार है। श्रावक को षट्आवश्यक का और मुनि को पंच महाव्रत का विकल्प आता है; उसको निश्चय का सहचर जानकर जिनवाणी में बहुत वर्णन किया गया है, परन्तु इस राग का फल संसार है ह्न ऐसा कहा है। जो जीव इस शुभराग से लाभ मानता है अथवा शुभराग करते-करते धर्म हो जायेगा ह्न ऐसा मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है; अत: संसारभ्रमण करेगा ही।

प्रश्न : जिनवाणी में कथित व्यवहार का फल यदि संसार ही है, तो उसके कथन से क्या लाभ ?

उत्तर : निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ अपूर्णदशा के कारण राग की मन्दता में किस-किस प्रकार का मन्द राग होता है; चौथे, पाँचवे, छठे गुणस्थानों की भूमिका में राग की क्या स्थिति होती है; पूजा, भक्ति, अणुव्रत,महाव्रतादि होते हैं; उनका व्यवहार बताने के लिए जिनागम में उनका कथन किया गया है; परन्तु इस राग की मन्दता के व्यवहार का फल तो बन्धन और संसार ही है।

समाचार दर्शन –

सम्पूर्ण देश में पर्वाधिराज पर्यूषण पर्व सानन्द सम्पन्न

पर्वाधिराज पर्यूषण पर्व दिनांक 18 सितम्बर से 27 सितम्बर, 2004 तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर की ओर से कुल 542 स्थानों पर विद्वान भेजे गये। आमंत्रण प्राप्त सभी स्थानों के जैन मंदिरों में पूजन-विधान, प्रवचन, प्रौढ़ एवं बालकक्षा, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि आयोजनों के माध्यम से महती धर्मप्रभावना हुई।

कोल्हापुर (महा.) : यहाँ श्री सर्वोदय स्वाध्याय समिति, कोल्हापुर द्वारा श्री विद्यानन्दी सांस्कृतिक भवन में अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर के दोपहर में ग्रन्थाधिराज समयसार पर एवं रात्रि में दशधर्मों पर अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का लाभ स्थानीय एवं आगन्तुक समाज को प्राप्त हुआ।

इसके अतिरिक्त ब्र. यशपालजी जैन, जयपुर द्वारा दोपहर में गुणस्थान विवेचन पर कक्षा एवं सायंकाल में छहढ़ाला ग्रन्थ पर मार्मिक प्रवचन हुये। प्रात: पण्डित जिनचन्दजी आलमान द्वारा परमात्मप्रकाश पर प्रवचन तथा पण्डित दिग्विजयजी आलमान, हेरले एवं पण्डित जितेन्द्रजी चौगुले, भिलवडी द्वारा तत्त्वार्थसूत्र एवं क्रमबद्धपर्याय पर कक्षा ली गई।

दोपहर में व्याख्यानमाला के अंतर्गत पण्डित शांतिनाथजी पाटील वसगडे, पण्डित शीतलजी शेट्टी अ.लाट, पण्डित नेमिनाथजी बालिकाई बाहुबली, पण्डित श्रीपालजी शास्त्री नल्लूर, पण्डित नितिनजी कोठेकर भोसे, पण्डित किरणजी पाटील दानोली, पण्डित दिग्विजयजी आलमान एवं पण्डित शीतलजी आलमान हेरले के प्रवचन हुये।

प्रतिदिन प्रात: चौबीस तीर्थंकर विधान एवं सांयकाल जिनेन्द्र भक्ति का आयोजन किया गया। रात्रि में अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी सम्पन्न हुए; जिसके अन्तर्गत दिनांक 26 सितम्बर को मंचित नाटक श्रीपाल-मैनासुन्दरी विशेष रहा।

सम्पूर्ण कार्यक्रम ब्र. यशपालजी जैन, जयपुर एवं पण्डित जिनचन्दजी आलमान, हेरले के निर्देशन में सम्पन्न हुये। साथ ही महाविद्यालय के अनेक स्नातक विद्वानों का एवं स्थानीय महानुभावों का सराहनीय सहयोग प्राप्त हुआ। इस प्रसंग पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 65 हजार रुपयों का सत्साहित्य एवं 10 हजार 500 रुपयों के सी.डी. एवं ऑडियो कैसिट्स घर-घर पहुचें तथा वीतराग-विज्ञान एवं जैनपथप्रदर्शक के अनेक सदस्य बने।

दि. 27 सितम्बर को समापन समारोह के अवसर पर जिनवाणी के रहस्योद्घाटन में दिये गये अमूल्य योगदान को ध्यान में रखते हुये सर्वोदय स्वाध्याय ट्रस्ट, कोल्हापुर की ओर से डॉ. भारिल्ल को **सर्वोदयी सारस्वत** की उपाधि से सम्मानित किया गया।

इसके अतिरिक्त पर्यूषण पर्व के पश्चात् समाज के विशेष आमन्त्रण पर पधारे डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर के एक-एक प्रवचन बेलगाँव एवं सांगली में भी हुये।

जयपुर (राज.) : यहाँ पर्व के अवसर पर तेरापंथी दि. जैन बड़ा मन्दिर घी वालों का रास्ता तथा मनिहारों के रास्ते स्थित श्री दिग. जैन बड़े दीवानजी के मंदिर में राजस्थान जैन सभा के तत्त्वावधान में श्री टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय के प्राचार्य पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल के क्रमश: प्रात: एवं रात्रि में श्रावक के षट्आवश्यक, देवदर्शन, साधना और समाधी तथा दशधर्म पर सारगर्भित प्रवचन हुए, जिसका लाभ उपस्थित जनसमुदाय को प्राप्त हुआ।

जयपुर (श्री टोडरमल स्मारक भवन) : यहाँ श्री टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय के तत्त्वावधान में प्रात: दशलक्षण विधान का आयोजन किया गया, तत्वश्चात् गुरुदेवश्री के सी. डी. प्रवचनोपरान्त पण्डित रमेशचन्दजी जैन, लवाणवाले सांगानेर के समयसार पर पूज्य अध्यात्मरसगर्भित सुश्राव्य प्रवचन हुए। दोपहर में श्रीमती कमलाजी भारिल्ल द्वारा रत्नकरण्डश्रावकाचार की कक्षा ली गई तथा रात्रि में पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील के दशधर्म पर मार्मिक प्रवचनों का लाभ उपस्थित छात्र एवं स्थानीय श्रोताओं को मिला।

जयपुर (आदर्शनगर) : यहाँ श्री मुलतान दि. जैन मंदिर में श्री टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय के अधीक्षक पण्डित शांतिकुमारजी पाटील के प्रात: दशधर्म एवं रात्रि में समयसार के संवर अधिकार पर तथा पण्डित योगेशकुमारजी शास्त्री, बरा के सच्चे देव के स्वरूप पर अध्यात्मरसगर्भित प्रवचन हुए।

मन्दसौर (म.प्र.) : यहाँ श्री शांतिनाथ दि. जैन मन्दिर, नई आबादी में पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा, इन्दौर के प्रात: समयसार एवं नियमसार ग्रन्थ पर तथा रात्रि में दशधर्मों पर सारगर्भित प्रवचन हुये। दोपहर में पण्डित अर्पितजी शास्त्री, बड़ामलहरा द्वारा प्रौढ़कक्षा एवं सांयकाल में बालकक्षा ली गई।

इन्दौर (साधनानगर) : यहाँ श्री पंचबालयती एवं विहरमान बीस तीर्थंकर जिनालय, साधनानगर में पण्डित उत्तमचन्दजी जैन, सिवनी के तीनों समय अत्यन्त सारगर्भित प्रवचन हुये; जिसके द्वारा समाज में महती धर्मप्रभावना हुई।

अजमेर (राज.) : यहाँ श्री सीमन्धर जिनालय में भोपाल से पधारे पण्डित कपूरचन्दजी कौशल द्वारा प्रात: समयसार, दोपहर में मोक्षमार्गप्रकाशक एवं रात्रि में दशधर्मों पर अत्यन्त सुबोध शैली में मार्मिक प्रवचन हुये। दशलक्षण विधान का आयोजन भी किया गया।

कोलकाता (प.ब.) : यहाँ श्री दि. जैन मन्दिर पद्दुपुकुर रोड, भवनीपुर में प्रात: गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन के पश्चात् पण्डित राकेशकुमारजी शास्त्री नागपुर के प्रात: एवं रात्रि में विभिन्न विषयों पर मार्मिक प्रवचन हुए।

अहमदाबाद (नवरंगपुरा) : यहाँ पर्व के अवसर पर पण्डित शैलेषभाई शहा, तलोद के तीनों समय समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्मों पर मार्मिक व्याख्यान हुये।

भीण्डर (राज.) : यहाँ पर्व के अवसर पर बाल ब्र. पण्डित अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री, खनियांधाना के प्रात: समयसार, दोपहर में मोक्षमार्गप्रकाशक एवं रात्रि में रत्नकरण्ड श्रावकाचार

पर सारगर्भित प्रवचन हुये।

छिन्दवाड़ा (म.प्र.) : यहाँ श्री दि. जैन मंदिर गोलगंज में पण्डित संजीवकुमारजी गोधा, जयपुर के प्रात: समयसार पर मार्मिक प्रवचन हुये। साथ ही गांधीगंज स्थित जिन-मंदिर में गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के सी.डी प्रवचन के उपरान्त क्रमबद्धपर्याय की कक्षा एवं दोपहर में करणानुयोग पर विशेष कक्षा चली। रात्रि में दशधर्मों पर सारगर्भित प्रवचन हुए। पर्व के पूर्व एवं पश्चात् भोपाल एवं नागपुर में भी आपके प्रवचनों का लाभ मिला। **ह्न दीपकराज जैन**

जबलपुर (म.प्र.) : यहाँ पायलवाला मार्केट स्थित श्री महावीर दि.जैन मन्दिर में पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री, जयपुर के तीनों समय समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्मों पर मार्मिक प्रवचन हुये। **ह्न मनोज जैन**

नागपुर (महा.) : यहाँ इतवारी स्थित श्री महावीरस्वामी जिनालय में पण्डित देवेन्द्रकुमारजी जैन, बिजौलिया के तीनों समय नियमसार, मोक्षमार्गप्रकाशक एवं रात्रि में दशधर्म तथा क्रिया-परिणाम-अभिप्राय पर मार्मिक प्रवचन हुए। इस अवसर पर श्री इन्द्रध्वजमण्डल विधान का आयोजन भी किया गया। **ह्न अशोक जैन**

पुणे (स्वा.भवन) : यहाँ पण्डित सुदीपकुमारजी जैन, बीना के तीनों समय समयसार, नयचक्र, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशधर्मों पर सारगर्भित प्रवचन हुये। **ह्न उदय शहा**

खुरई (सागर) : यहाँ ब्र. कल्पनाबेन, सागर के तीनों समय समयसार, नयों का स्वरूप, दशधर्मों पर सारगर्भित प्रवचन हुये। **ह्न धर्मेन्द्र सेठ**

सिवनी (म.प्र.) : यहाँ पण्डित सुबोधकुमारजी सिंघई, सिवनी के प्रात: उपदेश सिद्धान्तरत्नमाला तथा रात्रि में दशधर्म पर मार्मिक प्रवचन हुए। पण्डित धीरजकुमारजी शास्त्री, जबेरा के प्रवचनों का लाभ भी मिला।

शिकोहाबाद (उ.प्र.) : यहाँ नवनिर्मित दि. जैन मन्दिर में पण्डित धर्मेन्द्रकुमारजी शास्त्री, जयपुर के समयसार, इष्टोपदेश एवं दशधर्मों पर सारगर्भित प्रवचन हुये।

पुणे (चिंचवड़) : यहाँ पण्डित जितेन्द्रकुमारजी राठी, पारशिवनी द्वारा षोडशकारण भावना एवं दशधर्म पर मार्मिक प्रवचन हुये। दोपहर में शंका-समाधान के पश्चात् तत्त्वार्थसूत्र पर प्रौढ़कक्षा ली गई। **ह्न प्रकाशचन्द्र बडजात्या**

मुम्बई में डॉ. भारिल्ल

मुम्बई (महा.) : जैन अध्यात्म स्टडी सर्किल फैडरेशन, मुम्बई द्वारा दिनांक 11 से 18 सितम्बर, 2004 तक मुम्बई के विभिन्न स्थानों पर आयोजित जैन अध्यात्म महोत्सव के अन्तर्गत **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर** के शुद्ध अन्तस्तत्त्व, नि:शल्यो व्रती, समयसार का सार, समाधिमरण, आत्मा-परमात्मा, योग और उपयोग, आदि विविध विषयों पर हुए अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का लाभ उपस्थित जनसमुदाय को प्राप्त हुआ।

साहू रमेशचन्दजी जैन के निधन से जैन समाज को अपूरणीय क्षति

दिल्ली : भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी मुंबई एवं अखिल भारतीय दि. जैन परिषद् के अध्यक्ष, शाश्वत तीर्थराज श्री सम्मेदशिखरजी ट्रस्ट के अध्यक्ष, श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र महावीरजी प्रबंधकारिणी कमेटी के सदस्य तथा जैन समाज के प्रख्यात नेता साहू रमेशचन्दजी जैन का दिनांक 22 सितम्बर, 2004 को 79 वर्ष की आयु में शान्तपरिणाम पूर्वक देहावसान हो गया।

आप भारतीय ज्ञानपीठ के मैनेजिंग ट्रस्टी, भारतीय जन संचार संस्थान, इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ मास कम्युनिकेशन, इंडियन न्यूजपेपर सोसायटी और प्रेस ट्रस्ट के अध्यक्ष तथा टाइम्स ऑफ इण्डिया ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन के लम्बे अर्से तक एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर भी रहे हैं। इसके अतिरिक्त आपका सम्बन्ध अनेक शिक्षा प्रतिष्ठानों के साथ भी रहा है।

आप कवि हृदय थे। संस्कृति एवं शिक्षा क्षेत्र में दिये गये आपके अमूल्य योगदानस्वरूप आपको विद्यावाचस्पति एवं डी. लिट्. से भी सम्मानित किया गया। आपके निधन से सम्पूर्ण जैन समाज को गहरा आघात लगा है। जिसकी पूर्ति करना संभव नहीं है। दिवगंत आत्मा शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो - यही भावना है।

डॉ. भारिल्ल के वर्ष 2004 एवं 2005 के आगामी कार्यक्रम

09 से 12 नवम्बर, 04	देवलाली (नासिक)	महावीर निर्वाणोत्सव
26 नव. से 2 दिसम्बर, 04	शिकोहाबाद (उ.प्र.)	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा
27 से 31 दिसम्बर, 04	देवलाली (नासिक)	विधान एवं शिविर
08 से 09 जनवरी, 05	मुम्बई (कांदीवली)	डॉक्टरों का सम्मेलन
07 से 13 फरवरी, 05	दिल्ली	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा

साधना चैनल पर डॉ. भारिल्ल के प्रवचनों का समय बदला

साधना चैनल पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर के प्रवचन दिनांक 28 सितम्बर, 2004 से प्रतिदिन प्रातः 6.45 बजे प्रसारित किये जा रहे हैं। यदि आपके गांव/शहर में साधना चैनल न आता हो तो अपने केबल ऑपरेटर से कहकर प्रारंभ करावें। कोई कठिनाई होने पर श्री पंकज जैन (साधना चैनल) से 011-32106419 नम्बर पर सम्पर्क करें।